International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(2): 115-117

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(2): 115-117
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 02-01-2023
Accepted: 06-02-2023

अमन शर्मा
शोधछात्र एम. फिल्.
संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू और कश्मीर, भारत

Corresponding Author:
अमन शर्मा
शोधछात्र एम. फिल्.
संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू और कश्मीर, भारत

श्रीमद्भगवद् गीता में वर्णित शिक्षा व्यवस्था की वर्तमान में प्रासंगिकता

अमन शर्मा

सारांश
श्रीमद्भगवद् गीता में शिक्षा के पहलू हैं उनका वर्णन किया गया है तथा उस समय की शिक्षा प्रणाली की वर्तमान काल में क्या प्रासगिकता एवं उपयोगिता है, इस पर चर्चा की गयी है। शिक्षा के सभी बिन्दुओं पर चर्चा की गयी है यथाः– विद्यार्थी, शिक्षक आदि। विद्यार्थी का शिक्षक के प्रति व्यवहार का भी वर्णन किया गया है तथा शिक्षक को विद्यार्थीयों की जिज्ञासा को किस प्रकार शान्त करना चाहिए। उस प्रकार के अनेक बिन्दुओं का वर्णन इस पत्र में किया गया है।

कूटशब्दः श्रीमद्भगवद् गीता, शिक्षा व्यवस्था, विद्यार्थी

प्रस्तावना
श्रीमद्भगवद् गीता में शिक्षा के पहलू हैं उनका वर्णन किया गया है तथा उस समय की शिक्षा प्रणाली की वर्तमान काल में क्या प्रासगिकता एवं उपयोगिता है, इस पर चर्चा की गयी है। शिक्षा के सभी बिन्दुओं पर चर्चा की गयी है यथाः– विद्यार्थी, शिक्षक आदि।
भारत प्राचीन काल से ही शिक्षा का केन्द्र रहा है। भारत के प्रत्येक प्राचीन ग्रन्थ में शिक्षा की पद्धति वर्णित है जिसमें यह दर्शाया गया है कि हमारी शिक्षा कितनी विकसित थी तथा हम शिक्षा के उत्थान के प्रति कितना सजग थे। भारत के विभन्न प्राचीन ग्रन्थों में इस विषय में हमें बहुत ज्ञान प्राप्त होता है। शिक्षा का प्रमुख केन्द्र यहां से शिक्षा ग्रहण की जाती थी उस के लिए गुरूकुल व्यवस्था थी। शिक्षा का उद्देश्य व्यवसाय प्राप्त करना नहीं था अपितु अज्ञान से मुक्त करना था विद्यार्थी की आन्तरिक योग्यता का विकास करना था इसी लिए तो कहा जाता था ''सा विद्या या विमुक्तये''[1] यह वाक्य आज भी बहुत से शिक्षण संस्थानों के ध्येय वाक्य के रूप में देखने को मिलता है। आज के सन्दर्भ में कह सकते हैं गरीबी, विषमता, भेदभाव से जो मुक्त करे वही विद्या है। हमारी शिक्षा की ताकत यहां से ही ज्ञात होती है कि भारत पर विदेशी आक्रांताओं द्वारा किये गये प्रत्येक आक्रमण में सर्वप्रथम हमारे शैक्षिक ढांचे को ही ध्वस्त करने का काम किया है। प्राचीन पद्धति शिक्षा के दो आधार स्तम्भ माने जाते थे। गुरू एवं शिष्य। आधुनिक काल में इन्ही को शिक्षक एवं छात्र के नाम से पुकारा जाता है। सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था इन्ही पर आश्रित थी। शिष्य के मन में विषय सम्बन्धी प्रत्येक संशय का निधान करने हेतु गुरू सदैव तैयार रहते थे। जिज्ञासा का सम्मान किया जाता था। परन्तु वर्तमान में यह बहुत बड़ी समस्या है कि कक्षाओं में जो विद्यार्थी मौन रहता है उसे सभ्य अथवा आज्ञाकारी कहा जाता है तथा जो ज्यादा प्रश्न करता है उसे उदण्ड व अनुशासनहीन कहा जाता है। उपनिषदों में भी यह पाया जाता है कि एक बालक अपनी जिज्ञासा पूर्ति हेतु यमराज के समक्ष खड़ा हो जाता है।[2] मृत्यु के देवता माने गये यमराज भी बालक के प्रश्नों का उत्तर देते हैं एवं प्रतिक्षा करवाने के लिए स्वयं के पश्चाताप हेतु उस बालक (नचिकेता) को तीन वरदान देते हैं।

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे में अनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः।
नमस्ते अस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति में अस्तु तस्मात् प्रति त्रीन् बरान् वृणीष्व।।[3]

उपनिषदों के सार कहे जाने वाली गीता में भी प्रत्येक प्रसंग में भी हमारी शिक्षा व्यवस्था का सुन्दर रूप प्राप्त होता है। कौरवों और पाण्डवों के आपसी मतभेद होने के पश्चात भी कौरवों के पक्ष में खड़े गुरू द्रोण के प्रति पाण्डवों का सम्मान समान ही था और यह बात भी सर्व विदित है कि द्रोणाचार्य के प्रिय शिष्य के रूप में अर्जुन को ही माना जाता है। परन्तु शिष्यों के मन में इस बात की कोई

पश्चाताप नहीं था कि गुरू द्रोण अर्जुन को ही क्यों चाहते हैं। अर्जुन की विषय के प्रति एकाग्रता ही उसे गुरू का प्रिय बनाती थी। अन्य शिष्यों के प्रति भी गुरू समरूप ही थे उनके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देने हेतु सदैव तत्पर रहते थे। प्रश्न को गुरू के समक्ष किस प्रकार प्रकट करना है इसकी भी प्रक्रिया थी, जिस का ज्ञान गीता के इस प्रसंग में प्राप्त होता है।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।[4]

इस श्लोक के माध्यम से किसी प्रसंग में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि तू उस ज्ञान को तत्वदर्शी ज्ञानीयों के पास जाकर समझ। उनको भलीभांति प्रणाम करने से उनकी सेवा करने से एवं कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे तुम्हे तत्वज्ञान का उपदेश करेंगे।।
इस श्लोक से हमें यह ज्ञान प्राप्त होता है कि हमें अपने शिक्षकों के प्रति विनयशील रहना चाहिए एवं जब भी उनके समक्ष प्रश्न या कोई संशय लेकर जाए तो आदरपूर्वक जाकर उन्हे दण्डवत् प्रणाम करने के पश्चात् ही प्रश्न को उनके समक्ष रखें। दण्डवत् को हम यह कह सकते हैं कि शिक्षक या गुरू के प्रति किसी भी प्रकार के द्वेष को नहीं रखना। शिक्षा और ज्ञान उन्ही को मिलता है जिसमें जिज्ञासा हो। सम्मान और विनयशीलता से प्रश्न पूछने से ज्ञान मिलता है। विद्यावान की पहचान भी यही है कि विनयशील रहना।

विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।.
पात्रत्वात् धनमाप्नोति धनात् धर्मं ततः सुखम्।।[5]

गुरू अर्थात् शिक्षक की सेवा शुश्रुषा से ही विद्या ग्रहण की जाती है। हमारी प्राचीन संस्कृति में भी देखा गया है शिक्षा ग्रहण करने हेतु गुरूकुल में रहना अनिवार्य था। भगवान श्री राम भी शिक्षा ग्रहण करने हेतु गुरूकुल में निवास कियें एवं उन श्रेष्ठ गुरूजनों के आचरण तथा व्यवहार को ग्रहण कर ही जगत में पूजनीय हूए। हमें भी उनका ही अनुसरण करना चाहिए। गीता में भी कहा है श्रेष्ठ पुरूष जो जो आचरण करते हैं आम इन्सान भी वैसा ही आचरण वैसा ही काम करते हैं।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरूते लोकस्तदनुवर्तते।।[6]

वर्तमान काल एक ऐसी परम्परा स्थापित हो चुकी है यहां धनवान समाज धन के बल पर घर पर ही शिक्षक उपल्बध करवाता है। जिसे आधुनिक परिवेश में विशेष कक्षा (extra class or home tuition) कहा जाता है।
शिक्षा को प्रतिस्पर्धा का मैदान बनाने वाली वर्तमानकालीन समाज की सोच को भी गीता में ज्ञान का रास्ता दिखाया गया है। श्रीकृष्ण ने स्पष्ट रूप से कहा है कि सभी प्राणी अपनी प्रकृति के वशीभूत होकर ही कर्म करते हैं। प्रकृति का तात्पर्य क्षमता से है। ज्ञानवान अपनी प्रकृति के अनुसार ही चेष्टा करता है। इसमें किसी का हठ क्या करेगा। श्लोक इस प्रकार है–

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करष्यिति।।[7]

इससे यह ज्ञात होता है कि हमें कभी भी अपनी क्षमताओं के प्रतिकूल कोई भी कार्य का चयन नहीं करना चाहिए। वर्तमान काल में बहुधा देखा जाता है कि अधिकतर छात्र विषय का चयन अपनी इच्छा से नहीं करते अपितु इसमें भी किसी का अनुकरण करते हैं। जिसके फलस्वरूप वह असफलता पाते हैं। जिसमें हमारा मन हो अथवा हमारी रूचि हो हमें उसी विषय का चयन करना चाहिए। यदि हमारी रूचि रहेगी तो यह निश्चित है कि हम उस में सफल अवश्य होंगे। चाण्क्य निति में भी कहा गया है कि–

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवं परि धावति।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव हि।।[8]

अर्थात् जो मनुष्य निश्चित को छोड़कर अनिश्चित के प्रति दौड़ता है उसका निश्चित कार्य भी नष्ट हो जाता है और अनिश्चित तो नष्ट हैं ही। हमें भी यही चाहिए कि जब हम विद्या अध्ययन हेतु किसी विषय का चयन करें तो हमारे चयन का आधार किसी के हठ की पूर्ति करना न हो बल्कि हमारी व्यक्तिगत क्षमता को केन्द्र में रख कर ही हो। क्षमता से भिन्न चयनित कार्य में रूचि स्थपित होना असंभव है एवं आत्मरूचि के बिना किया गया कार्य अनावश्यक क्रोध तथा मानसिक अस्थिरता का कारक बनता है। क्रोध से बुद्धि नाश होता है बुद्धि नाश हो जाने पर मनुष्य स्वयं का नाश कर देता है। ऐसा गीता में भी वर्णित है–

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।[9]

वर्तमान में अध्ययनरत विद्यार्थीयों में एक बहुत बड़ी समस्या का निर्माण हो रहा है जिसे तनाव या अवसाद (stress or depression) कहा जाता है। इसका सबसे बड़ा कारण असंतुलित खानपान एवं अस्तव्यस्त दिनचर्या से है। इन्ही सभी कारणों से काम के प्रति ध्यान नहीं रहता। जिसका खानपान संतुलित रहता है। दिनचर्या नियमित रहती है उस व्यक्ति में अनुशासन आ जाता है। ऐसा व्यक्ति दुखों एवं रोगों से दूर रहता है। ये जीवन में आनन्द और उल्लास को बढ़ाता है।
गीता में भी एक श्लोक के माध्यम से इसे स्पष्ट किया गया है–

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुखहा।।[10]

अभिभावकों को चाहिए कि वह इस विषय में बच्चों से अवश्य बात करें अवसाद के कारणों का पता लगाएं। गीता के माध्यम से उन्हे इस ओर लगाएं कि कुछ भी सदैव नहीं रहने वाला हमें हर परिस्थिति का सामना करना है। जिस प्रकार सदैव एक सा मौसम नहीं रहता नियत समयानुसार परिवर्तन रहता है उसी प्रकार प्रशंसा एवं निदा भी परिवर्तन के नियम से बद्ध हैं।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।।[11]

यदि हम इन बातों से परिचित होंगें तथा अवसाद से मुक्त रहेंगे तो हमारा मन एवं मस्तिष्क स्वस्थ रहेगा। स्वस्थ मन ही कार्य में एकाग्रता को बढ़ाता है। एकाग्रता से किया गया कार्य ही सफलता की राह प्रशस्त करता है। ऐसा बहुधा देखा भी गया है कि जिस छात्र में एकाग्रता रहती है वह छात्र शिक्षक का प्रिय रहता है। अर्जुन के प्रति द्रोणाचार्य के प्रेम का एक कारण यह भी रहा है अर्जुन को केवल लक्ष्य ही दिखाई देता है न कि अन्य वस्तुएं। अपने कार्य में एकाग्रता ही मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। स्थिर मन ही कार्य को उचित राह प्रदान करता है यदि हमारा मन आकर्षणों के प्रति रहेगा तो चयनित लक्ष्य प्राप्ति में असफल होना निश्चित है। गीता में भी कहा गया है कि स्थितप्रज्ञ ही शान्ति को प्राप्त करता है–

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।।[12]

अभिभावकों को भी चाहिए कि वह सदैव कार्य के प्रति एकाग्र रहने की बात करें न कि परिणाम का बोझ बच्चों पर डालें। सबकी क्षमता और परिश्रम की शैली भिन्न भिन्न है। हम परिणाम की तुलना खुद की क्षमताओं से न कर के अन्य अभ्यर्थियों के परिणाम से करते हैं। और उस प्रतिस्पर्धा में पीछे छूटने पर अवसाद का शिकार हो जाते हैं। हमें अनुकूल परिणाम न आने पर निष्क्रिय नहीं होना है अपितु कर्म करते रहना है क्योंकि कर्म करना हमारे हाथ है और परणिाम तय करने के अन्य पहलू हैं।

यथा– अन्य प्रतिभागीए परिस्थिति आदि इसिलिए सदा कियाशील रहना ही हमारा कर्तव्य है निष्क्रियता सबसे बड़ा अवगुण है। गीता में भी इसे प्रतिपादित किया गया है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा मे संगोऽस्त्वकर्मणि।।[13]

विद्यार्थी का यह कर्म है कि वह विद्या का अध्ययन तथा ज्ञान अर्जन निरन्तर करता रहे। अर्जित ज्ञान कभी व्यर्थ नहीं जाता। ज्ञान सभी संशयों की निवृति करता है। ज्ञान ही श्रेष्ठ है ऐसा गीता में भी कहा गया है कि सभी प्रकार के कर्मों से ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है।

श्रेयान्सर्वद्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तपः।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।[14]

हमें चाहिए कि हम ज्ञान प्राप्ति हेतु सदा तत्पर रहें। ज्ञान श्रद्धावान मनुष्य को प्राप्त होता है। ''श्रद्धावॉल्लभते ज्ञानं''[15] श्रद्धा से तात्पर्य है कि ज्ञान की अवहेलना न करना एवं उस प्राप्त ज्ञान का अनुसरन भी करना। ज्ञान का रक्षण भी तभी होता जब हम उसे अपने जीवन मे प्रयोग में लाये। इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसंदेह कुछ भी नहीं है। ''न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते''[16] ज्ञानवान मनुष्य को भी चाहिए कि वह भी ज्ञान का प्रचार प्रसार करते रहें। जो ज्ञान को केवल अपने तक सीमित रखता है उसका प्रसार नही करता उसका ज्ञान क्षीण हो जाता है कहा भी गया है विद्या ऐसा अनमोल धन है जो व्यय (खर्च) करने से वृद्धि को प्राप्त करता है–

''व्यय कृते वर्धते एव नित्यं, विद्या धनं सर्व धनप्रधानम''[17]

जिसके पास विद्या रूपी धन नहीं मनुष्य होते हुए भी केवल धरती पर भार है और पशु समान है।

येषां न विद्या तपो न दानं,
ज्ञानं न शीलं गुणो न धर्माः।
ते मर्त्युलोके भुविभारभूतः,
मनुष्य रूपेण मृगश्चरन्ति।।[18]

वर्तमान में अधिकतर देखा जाता है कि हम चातुर्य को ज्ञान का पर्याय समझते हैं। ज्ञान वही उपयोगी माना जाता है जो ज्ञान विवेक युक्त है क्योंकि गीता में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि विवेक हीन ज्ञान से मनुष्य अपने पथ से अवश्यमेव भ्रष्ट हो जाता है।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।।[19]

अतः इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि चातुर्य अथवा वाक्पटुता ज्ञानवान होने का प्रमाण नहीं है यह बात गीता हमें बतलाती हैं।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि गीता केवल शैक्षिक विकास ही नही करती अपितु नैतिकता का भी विकास करती है। वर्तमान काल में भी चाहिए कि शिक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ करने हेतु हमें गीता में वर्णित शिक्षा पद्धति के अनुरूप ही अपनी कार्यशैली बनानी होगी क्योंकि अच्छी शिक्षा ही समाज के उज्जवल भविष्य की नींव रखती है।

संदर्भ सूची

1. विष्णु पुराण
2. यम नचिकेता संवाद कठोपनिषद् 1/1
3. कठोपनिषद् 1/1/9
4. श्रीमद्भगवद्गीता 4/34
5. हितोपदेश
6. श्रीमद्भगवद्गीता 3/21
7. श्रीमद्भगवद्गीता 3/33
8. चाणक्य नीति 1/13
9. श्रीमद्भगवद्गीता 2/63
10. श्रीमद्भगवद्गीता 6/17
11. श्रीमद्भगवद्गीता 2/14
12. श्रीमद्भगवद्गीता 2/70
13. श्रीमद्भगवद्गीता 2/47
14. श्रीमद्भगवद्गीता 2/33
15. श्रीमद्भगवद्गीता 2/39
16. श्रीमद्भगवद्गीता 2/38
17. रूचिरा भाग 2 विद्याधनम्
18. नीतीशतकम्
19. श्रीमद्भगवद्गीता 2/40